सांवत सिंह एवं अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य

(जाफ़र इमाम, के. सुब्बा राव और रघुबर दयाल, जे जे.)

9 दिसंबर, 1960

अपील-दोषमुक्त के विरुद्ध-पालन किए जाने वाले सिद्धांत- "सारवान और सम्मोहक कारण"-- अर्थ और विस्तार- न्यायालय की शक्ति- भारत का संविधान, अनुच्छेद-136 ।

किसी गांव में दो प्रतिद्वंद्वी गुट थे, एक गुट राजपूतों का और दूसरा कृषकों का था। एक विशेष त्यौहार के दिन दोनों गुट एक ही मंदिर में पूजा-अर्चना करने गये और कृषक सबसे पहले मंदिर पहुंचे उन्होंने उस स्थान पर कब्ज़ा कर लिया जिस पर आमतौर से राजपूतो का कब्ज़ा था। इसके पश्चात् राजपूत आये और उन्होंने किसानों द्वारा कब्जे की जगह पर बैठने का विरोध किया। वे थोड़ी दूर गये और एक मत्रंणा करने के बाद मंदिर में वापस आये और किसानों पर बंदूकों, तलवारों और लाठियाें से

हमला किया जिसके परिणामस्वरूप कई व्यक्ति घायल हो गए और दो की मृत्यु हो गई। 43 आरोपी जिन पर दंगे में भाग लेने का आरोप लगाया गया था अपराध प्रतिबद्ध होने के कारण सत्र न्यायाधीश के समक्ष

मुकदमा धारा- 302, धारा-149 और धारा- 148 के भारतीय दंड संहिता के तहत प्रतिपेषित किया गया। सत्र न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया की अभियुक्तों की ओर से कृषकों को मारने का आरोपियों का सामान्य उद्देश्य स्थापित नहीं हुआ और उचित संदेह से परे यह भी साबित नहीं हुआ कि अभियुक्त किसी विशेष अपराध के दोषी थे। इन निष्कर्षो के आधार पर सत्र न्यायाधीश ने सभी आरोपियों को बरी कर दिया। अपील पर उच्च न्यायालय द्वारा सम्पूर्ण साक्ष्यों की जांच करने के बाद कुछ अभियुक्तों को धारा-304 सपठित धारा-149 और धारा-148 भारतीय दण्ड संहिता के तहत आपराधिक मानव-वध गैर इरादतन हत्या का दोषी ठहराया गया। उन्हें कारावास की विभिन्न शर्तों के साथ सजा सुनाई। कुछ अन्य आरोपियों के संबंध में अपील खारिज कर दी गई उनके खिलाफ कोई भी तर्कसंगत संदेह से परे कोई मामला आरोपित नहीं किया गया। अपील अनुसार उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि व सजा के विरुद्ध विशेष अनुमति।

माना गया कि, शब्द "सारवान और सम्मोहक कारण" इस न्यायालय द्वारा प्रयुक्त दोषमुक्ति के आदेश को रद्द करने के लिए इसके निर्णयों का उद्देश्य यह विचार व्यक्त करना था कि अपीलीय अदालत न केवल सिद्धांतों को ध्यान में रखेगी बल्कि प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित शेओ स्वरूप के मामले में अपना स्पष्ट कारण व निष्कर्ष भी बताना होगा कि बरी करने का आदेश ग़लत था।

दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील अनुसार मुकदमा-विधि पर चर्चा से निम्नलिखित परिणाम निकलते हैं:-

(1) एक अपीलीय न्यायालय के पास साक्ष्य जिस पर दोषमुक्ति का आदेश आधारित है कि समीक्षा करने की पूर्ण शक्ति है; (2) शेओ स्वरूप के मामले में अभिनिर्धारित सिद्धांत अनुसार अपील के निस्तारण के क्रम में अपीलीय न्यायालय के दृष्टिकोण एक सही मार्गदर्शन प्रदान करते हैं; (3) इस न्यायालय के निर्णयों में प्रयुक्त विभिन्न पदावली, जैसे (1) "सारवान और सम्मोहक कारण", (II) "अच्छे और पर्याप्त रूप से ठोस कारण", और (III) "मजबूत कारण", का इरादा नहीं है किसी अपीलीय न्यायालय की शक्ति को निस्संदेह संक्षिप्त करना बरी किये जाने के विरुद्ध समस्त साक्ष्यों की समीक्षा करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए, लेकिन ऐसा करने में ऐसा नहीं होना चाहिए कि केवल रिकॉर्ड पर मौजूद हर मामले पर विचार करें जिसका इससे संबंध हो तथ्य के प्रश्न और नीचे न्यायालय द्वारा दिए गए कारण पर पहुंचने में बरी करने के अपने आदेश के समर्थन में उन तथ्यों पर निष्कर्ष, लेकिन कारणों को निर्णय में व्यक्त करना चाहिए, जिसके कारण यह माना गया कि बरी कर दिया गया था उचित नहीं।

शेओ स्वरूप बनाम राजा सम्राट, (1934) एल. आर. 61 आई. ए. 398, विचार किया और पालन किया।

नूर मोहम्मद बनाम एम्परॉय, ए.आई.आर. 1945 पी.सी. 151, सूरजपाल सिंह बनाम राज्य, [1952] एस.सी.आर. 193, अजमेर सिंह बनाम द पंजाब राज्य, [1953] एस.सी.आर. 418, पूरन बनाम राज्य पंजाब, ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 459, सी. एम. नारायण बनाम राज्य त्रावणकोर-कोचीन, ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 478, तुलसीराम कानू बनाम. राज्य, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 1, मदन मोहन सिंह का मामला, वायु। 1954 एस.सी. 637, ज़िंगली एरियल बनाम स्टेट ऑफ़ यू.पी., वायु। 1954 एस.सी. 15, राव शिव बहादुर सिंह बनाम राज्य विंध्य प्रदेश, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 322,

एस. ए. ए. बियाबानी बनाम। मद्रास राज्य, ए.आई. आर. 1954 एस.सी. 645, अहेर राजा खीमा बनाम सौराष्ट्र राज्य, [1955] 2 एस.सी.आर. 1285, भगवान दास बनाम राजस्थान राज्य, ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 589 और बलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य, ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 216, चर्चा की।

उच्च न्यायालय ने तात्कालिक मामले के सही परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए, विचार करने पर निश्चित निष्कर्ष संपूर्ण साक्ष्य के आधार पर दिया, और ऐसा करने से वह विचलित नहीं हुआ जैसा कि शीओ स्वरूप प्रिवी काउंसिल के मामले में निर्धारित हुआ, तथा उन आधाराे का उल्लेख किया कि दोषमुक्त किन आधारो पर उचित नहीं था।

अब्दुल गनी बनाम एम.पी. राज्य, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 31, संदर्भित।

यद्यपि, संविधान के अनुच्छेद-136 के तहत इस न्यायालय की अत्यधिक व्यापक शक्तियाँ हैं। संविधान बहुत व्यापक है, इसमें हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दि जा सकती है, जब तक कि "कानूनी प्रक्रिया के स्वरूपों की उपेक्षा न की जाए या कुछ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन या अन्यथा, तात्विक और घौर अन्याय किया गया हो," तथ्याेें के प्रश्नों पर वास्तव में इस न्यायालय की परंपरा हस्तक्षेप करने की नहीं है असाधारण मामलों को छोड़कर जब निष्कर्ष ऐसा हो कि इस न्यायालय की अंतरात्मा को झकझोर देता है।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील की संख्या 119./ 1958

राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर के 29 जुलाई, 1957 के निर्णय और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील। आपराधिक अपील 1954 की संख्या 42 में

आर. एल. कोहली और सी. एल. सरीन अपीलकर्ताओं की ओर से।

एस.के. कपूर और डी. गुप्ता प्रतिवादी की ओर से।

9 दिसंबर, 1960 न्यायालय द्वारा पारित निर्णय

सुब्बा राव, जे.- यह अपील राजस्थान के उच्च न्यायालय, जोधपुर के धारा- 304, सपठित धारा-149, और धारा-148 भारतीय दंड संहिता में दोषसिद्धि और सजा के खिलाफ विशेष अनुमति अपील 9 अपीलार्थीयों के द्वारा कि गई है।

9 अपीलकर्ताओं के साथ 34 अन्य व्यक्तियों को सत्र न्यायाधीश, मेड़ता के समक्ष आरोपी बनाया गया था। अभियोजन का मामला संक्षेप में इस प्रकार था: हरनावा गांव में दो गुट थे- एक

में राजपूत और दूसरे गुट में गांव के किसान शामिल थे। स्वीकृत है कि इन दोनों गुटों के बीच कुछ खेतों को लेकर विवाद थे। 31 अक्टूबर, 1951 को, लगभग 3-30 बजे अपराह्न दिपावली के अगले दिन, जिसे आम तौर पर राम-राम दिवस के रूप में जाना जाता है, दोनों समूह बाईजी-कथन नामक मंदिर में गए। कृषक प्रथमतः मंदिर में गए और उस स्थान पर बैठ गए जहाँ पर आमतौर पर राजपूतों का आधिपत्य होता था। इसके बाद जब राजपूत वहां गए, तो उन्होंने देखा कि उनके बैठने की जगह पर किसानों का आधिपत्य है और उन्होंने इसे अपना अपमान समझा। यद्यपि पुजारी ने उन्हें किसी अन्य स्थान पर बैठने के लिए आमंत्रित किया, लेकिन उन्होंने ऐसा करने से इनकार कर दिया और एक बरगद के पेड़ के पास चले गए जो मंदिर से थोड़ी दूरी पर था। वहां उन्होंने एक संक्षिप्त विचार-विमर्श किया और फिर बंदूकों, तलवारों और लाठियों से लैस होकर

मंदिर लौट आये। राजपूतों ने किसानों पर कुछ गोलियाँ चलाईं और उन्हें तलवारों और लाठियों से भी पीटा। नतीजतन, 16 कृषकों को चोटें आईं और इनमें से 6 को बंदूक की गोली लगी, जिनमें से दो कृषक, दीना और देवा, की चोट लगने के कारण मृत्यु हो गई। शेष 14 घायल व्यक्तियों में से 3 को गंभीर चोटें आईं और बाकी को सामान्य चोटें आईं। दंगों में भाग लेने का आरोप लगाने वाले तैंतालीस व्यक्तियों को, धारा- 302 सपठित धारा-149 और धारा-148 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध करने के लिए, सत्र न्यायाधीश, मेड़ता के समक्ष मुकदमे के लिए रखा गया था। पाँच आरोपियों ने घटना स्थल पर अपनी उपस्थिति स्वीकृत की, परन्तु अपना पक्ष रखा कि वे मंदिर में पारंपरिक प्रसाद चढ़ाने के बाद जब वे लौट रहे थे तो कृषकों ने उन पर हमला किया। अन्य लोगों ने अन्यत्र उपस्थिति को तर्क के रूप में प्रस्तुत किया।

विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया और यह प्रमाणित नहीं माना कि अभियुक्तों का कृषकों को मारना एक सामान्य उद्देश्य हो और यह भी किसी उचित संदेह से परे साबित नहीं हुआ कि कोई भी अभियुक्त किसी विशेष अपराध का दोषी था। इन निष्कर्षों पर उन्होंने सभी आरोपियों को बरी कर दिया।

अपील पर उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने पाया कि आरोपी एक विधि-विरूद्ध जमाव के सदस्य थे, वे कृषकों को पीटने के

सामान्य उद्देश्य से उत्साहित थे और 43 आरोपियों में से यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो गया कि अपीलार्थी, जो संख्या में 9 हैं, उन्होंने विधि-विरूद्ध

जमाव की गतिविधियों में भाग लिया। उस निष्कर्ष पर उन्होंने माना कि आरोपी धारा- 304 सपठित धारा- 149 भारतीय दंड संहिता के तहत हत्या कि कोटि में न आने वाला आपराधिक मानव-वध के दोषी थे। उन्होंने यह भी माना कि अपीलार्थी 1, 2, 3 और 4 भी धारा-148 धारा-147 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध के लिए दोषी थे। क्योंकि वे घातक हथियारों से लैस थे। धारा-304 सपठित धारा-149, अपीलार्थीयों को दस साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई, और धारा-148 के तहत अपराध के लिए अपीलार्थी 1 से 4 को एक वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई और बाकी को धारा-147, के तहत छह माह के सश्रम कारावास से दंडित किया गया। सम्पूर्ण साक्ष्यों के परीक्षण के उपरांत, विद्वान सत्र न्यायाधीश के मत से सहमत हुए कि किसी भी अन्य अभियुक्त के खिलाफ संदेह से परे अन्य मामला नहीं बनना पाया गया। इसलिए, 9 अपीलार्थीयाेें के संबंध में अपील की अनुमति दी गई और अन्य के संबंध में खारिज कर दी गई।

अपीलार्थीयों के विद्वान वकील ने तर्क दिया कि सत्र न्यायाधीश द्वारा साक्ष्याेें पर उचित निष्कर्ष दिया गया है और उच्च न्यायालय के पास अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए तात्विक और बाध्यकारी आधार नहीं थे।

हाल के वर्षों में दोषमुक्त किए जाने के ख़िलाफ़ हर अपील में "बाध्यकारी कारण" शब्द जादुई अभिव्यक्ति बन गए हैं। शब्द इतने लचीले हैं कि उनकी परिभाषा आसान नहीं है; परिणाम के साथ, उनकी व्याख्या दो चरम विचारों के बीच भिन्न थी - एक का मानना था कि यदि एक विचारण न्यायालय ने किसी आरोपी को बरी कर दिया, तो एक अपीलीय अदालत एक अलग दृष्टिकोण नहीं अपनाएगी जब तक कि निष्कर्ष ऐसा न हो कोई भी उचित व्यक्ति उस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचेगा, और दूसरा यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्या इसमें हस्तक्षेप के लिए बाध्य कारण हैं, केवल अपीलीय अदालत के विवेक को ही मापदण्ड के रूप में स्वीकार करना। इन परिस्थितियों में हम बात को स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं।

दोषमुक्त किए जाने के खिलाफ अपील में अपीलीय अदालत की शक्तियों का दायरा *शेओ स्वरूप बनाम राजा-सम्राट* ([1]) मामले में प्रिवी काउंसिल द्वारा स्पष्ट किया गया है।

लॉर्ड रसेल ने पृष्ठ-404 पर इस प्रकार निरीक्षण किया।

> "... उच्च न्यायालय को हमेशा ऐसे मामलों पर उचित महत्व देना चाहिए और विचार करना चाहिए जैसे (1) गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में विचारण न्यायाधीश के विचार, (2) निर्दोषता की प्रकल्पना अभियुक्त के पक्ष में, एक प्रकल्पना निश्चित रूप से इस तथ्य से कमजोर नहीं हुई है

कि उसे अपने मुकदमे में दोषमुक्त कर दिया गया है, (3) किसी भी संदेह के लाभ के लिए अभियुक्त का अधिकार, और (4) अपीलीय अदालत की मंथरता एक न्यायाधीश द्वारा खोजे गए तथ्यों के निष्कर्ष के साथ छेड़छाड करना, जिसे गवाहों को देखने का लाभ मिला था..."

मामले के तथ्यों की ओर ध्यान दिलाते हुए प्रिवी काउंसिल ने कहा,

"... उनके पास यह विचार करने का कोई कारण नहीं है कि उच्च न्यायालय तथ्य के निष्कर्ष पर पहुंचने में सभी उचित मामलों पर विचार करने में विफल रहा हो।"

इन दो परिच्छेद दोषमुक्त किए जाने के खिलाफ अपील के निपटारे में अपीलीय न्यायालय द्वारा अपनाए जाने वाले सिद्धांतों और सबूतों के पुनर्मूल्यांकन में उचित देखभाल का संकेत देते हैं। प्रिवी काउंसिल ने अपने पिछले अवलोकनों कि व्याख्या कि गई

नूर मोहम्मद बनाम सम्राट ([2]) में पेज- 152

"उनके प्रभुत्व ने इसे पुनः पढ़ना आवश्यक नहीं समझा, परन्तु यह देखना चाहेंगे कि वहां निर्धारित शब्द के उपयोग में वास्तव में केवल एक ही सिद्धांत है; वह है उच्च न्यायालय के पास उन सभी साक्ष्यों की समीक्षा

करने की सम्पूर्ण शक्ति, जिन पर दोषमुक्त करने का आदेश आधारित था, और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि उन सबूतों पर दोषमुक्त करने का आदेश उलट दिया जाना चाहिए।"

(1) (1934) एल.आर. 61 आई.ए. 398.

(2) ए.आई.आर. 1945 पी.सी. 151.

यह दो निर्णय यह प्रमाणित करते हैं कि दोषमुक्ति के खिलाफ अपील में अपीलीय न्यायालय की शक्ति दोषसिद्धि के खिलाफ अपील से अलग नहीं है; अंतर शक्ति की सामग्री के बजाय दृष्टिकोण और दृष्टिकोण के तरीके में अधिक निहित है। अपीलीय न्यायालय की शक्ति के दायरे को परिभाषित करने वाले इन निर्णयों का वर्ष 1951 तक भारत के सभी न्यायालयों द्वारा पालन किया गया था, जब, ऐसा कहा जाता है, जब सूरजपाल सिंह बनाम राज्य ([1]) में इस न्यायालय ने एक अलग सिद्धांत निर्धारित किया था। परन्तु उस फैसले के अध्ययन से उस गठन कि पुष्ठी नहीं होती जो अक्सर उसमें रखा जाता है। जिस अंश पर भरोसा किया गया है वह पृष्ठ-201 पर है और यह इस प्रकार पठनीय है।

"यह अच्छी तरह से प्रमाणित है कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा-417 के तहत एक अपील में, उच्च

न्यायालय के पास उन साक्ष्यों की समीक्षा करने की सम्पूर्ण शक्ति है, जिन पर दोषमुक्त करने का आदेश आधारित था, परन्तु यह भी समान रूप से व अच्छी तरह से व्यवस्थित व प्रमाणित है कि निर्दोषता की प्रकल्पना आरोपी को विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए जाने से और आगे प्रबलता मिली है, और विचारण न्यायालय के निष्कर्षों व गवाहों को देखने और उनके साक्ष्य सुनने का लाभ मिला था, जिन्हें केवल बहुत ही तात्विक और बाध्यकारी कारणों से उलटा किया जा सकता है।"

उस मामले के तथ्यों पर इस न्यायालय ने यह माना कि, "हम यह मानने के इच्छुक हैं कि सत्र न्यायाधीश ने मामले के तथ्यों पर उचित दृष्टिकोण अपनाया था, और हमारी राय में उस दृष्टिकोण को उलटने के लिए कोई उपयुक्त कारण नहीं था"। हमारा मानना है कि ये टिप्पणियाँ प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित कानून के पुनर्कथन और न्यायालय के समक्ष मामले के तथ्यों पर इसे लागू करने से अधिक और कुछ नहीं हैं। यद्यपि विद्वान न्यायाधीशों ने एक पैराग्राफ में "सारवान और सम्मोहक कारण" शब्दों का इस्तेमाल किया और अगले पैराग्राफ में "अच्छे कारण" शब्दों का प्रयोग किया, इन टिप्पणियों का उद्देश्य किसी भी असहमति को दर्ज करना नहीं था

शेओ स्वरूप के मामले ([1]) में लॉर्ड रसेल की टिप्पणियों के साथ, उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता कि धारा-417 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय किन मामलों को ध्यान में

(1) [1952] एस.सी.आर. 193.

रखेगा। यदि ऐसा प्रयोजन था, तो इस न्यायालय ने कम से कम *शेओ स्वरूप के मामले* ([1]) का उल्लेख किया होता, जो उसने नहीं किया। *अजमेर सिंह बनाम पंजाब राज्य ([2])* मामले में इस न्यायालय द्वारा फिर से वही शब्द दोहराए गए। उस मामले में अपीलीय न्यायालय ने दोषमुक्त करने के आदेश को इस आधार पर खारिज कर दिया कि आरोपी अपने

खिलाफ सामने आने वाली परिस्थितियों को स्पष्ट करने में विफल रहा था। इस न्यायालय ने माना कि किसी अभियुक्त की बेगुनाही की प्रकल्पना को दोषमुक्त करने के आदेश से बल मिलता है, अपीलीय न्यायालय केवल तात्विक और बाध्यकारी कारणों से ही हस्तक्षेप कर सकता था। पूर्व के निर्णयों के संबंध में की गई टिप्पणियाँ इस मामले पर भी लागू होती हैं। महाजन, जे., जैसा कि वह तब थे, ने पूरन बनाम पंजाब राज्य ([3]) में न्यायालय का फैसला सुनाते हुए फिर से "बहुत महत्वपूर्ण और सम्मोहक कारण" शब्दों का इस्तेमाल किया, लेकिन इसके तुरंत बाद विद्वान न्यायाधीश ने शेओ स्वरूप के फैसले का उल्लेख किया। *शेओ स्वरूप के मामले*([1]) में उन परिस्थितियों के बारे में बताया जिन्हें अपीलीय

न्यायालय को दोषमुक्त करने के आदेश में हस्तक्षेप करते समय ध्यान में रखना चाहिए। तथाकथित सूत्र और *शेओ स्वरूप के मामले* ([1]) में वर्णित परिस्थितियों की तुलना यह इंगित करती है कि विद्वान न्यायाधीश ने उन शब्दों का इस्तेमाल केवल प्रिवी काउंसिल द्वारा दिए गए कानून के बयान को समझने के लिए किया था। मुखर्जी, जे., जैसा कि वह तब थे, ने *सी. एम. नारायण बनाम त्रावणकोर राज्य- कोचीन* ([4]) में फिर से प्रिवी काउंसिल के फैसले का उल्लेख किया और अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्ति और दोषमुक्त के खिलाफ अपील में उचित दृष्टिकोण की भी संपुष्टि की। विद्वान न्यायाधीश ने अपीलीय न्यायालय की शक्ति पर कोई और अंकुश नहीं लगाया। परन्तु यह देखा गया कि उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से प्रमाणित सिद्धांतों को अपने सामने नहीं रखा और विचारण न्यायलय के फैसले को 'उस न्यायालय द्वारा विश्वास किए गए महत्वपूर्ण मामलों पर ध्यान न देकर या उचित महत्व दिए बिना' पलट दिया। *तुलसीराम कानू बनाम राज्य* ([5]) में।

दोषमुक्त करने के आदेश के विरूद्ध अपीलीय न्यायलय के दृष्टिकोण का वर्णन करने के लिए न्यायालय ने एक अलग पदावली का प्रयोग किया। वहां सत्र न्यायालय ने व्यक्त किया कि उसके

(1) (1934) एल.आर. 61 आई.ए. 398।

(2) [1953] एस.सी.आर. 418।

(3) एक आई.आर. 1933 एस.सी. 459।

(4) ए.आई.आर. 1953 एस.सी. 478।

(5) ए.आई.आर. 1954 8.सी.आई।

समक्ष रखे गए साक्ष्यों पर अभियुक्तो के अपराध के संबंध में स्पष्ट रूप से उचित संदेह था। कानिया, सी.जे. ने कहा कि अपीलीय न्यायालय के किसी अलग निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले इस तरह के उचित संदेह को दूर करने के लिए अच्छे और पर्याप्त रूप से ठोस कारणों की आवश्यकता होती है। यह टिप्पणी उच्च न्यायालय के एक फैसले के संबंध में की गई थी जिसमें सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए विभिन्न विस्तृत कारणों पर विचार-विमर्श नहीं किया गया था। *मदन मोहन सिंह के मामले* ([1]) में, विशेष अनुमति द्वारा अपील पर, इस न्यायालय ने कहा कि उच्च न्यायालय ने 'आपराधिक न्याय प्रशासन के नियमों और सिद्धांतों को स्पष्ट रूप से अपने सामने नहीं रखा था और इसलिए गैर-विज्ञापन के कारण निर्णय दूषित हो गया। और सबूतों में मौजूद विभिन्न भौतिक तथ्यों की गलत समझ और परिणामस्वरूप उन निष्कर्षों को सही महत्व और विचार देने में विफलता, व अपारदर्शिता जिन पर विचारण न्यायालय ने अपना निर्णय संधारित किया था।' *ज़िंग्ली एरियल बनाम एम.पी. राज्य* ([2]) में इस न्यायालय ने फिर से पूर्वोक्त में दिए गए प्रिवी काउंसिल के निर्णय के अंश का हवाला दिया और इसे उस मामले के तथ्यों पर लागू किया। *राव शिव*

बहादुर सिंह बनाम विंध्य प्रदेश राज्य ([3]) में, भगवती, जे. ने न्यायालय की ओर से व्यक्त करते हुए और इस न्यायालय के पूर्व में किये गये निर्णय का हवाला देते हुए, प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित सिद्धांत को स्वीकृत किया और चार प्रस्तावों में प्रिवी काउंसिल की टिप्पणियाँ को यथार्थ में, इसे बहाल किया। यह देखा जा सकता है कि विद्वान न्यायाधीश ने "सारवान और सम्मोहक कारणों" जैसे शब्दों का उपयोग नहीं किया। *एस.ए.ए. बियाबानी बनाम मद्रास राज्य* ([4]) में, जगन्नाधदास, जे., के पूर्व के निर्णयों काे निदिष्ट करने के बाद, पृष्ठ 647 पर उल्लेखित।

> "जबकि इस तरह की अपील पर कोई संशय नहीं है कि उच्च न्यायालय तथ्यों पर गौर करने और साक्ष्य के अपने अनुमान पर पहुंचने का हकदार था, यह भी प्रमाणित विधि है कि, जहां मामला गवाहों के मौखिक साक्ष्य पर आधारित होता है, विचारण न्यायाल द्वारा ऐसे साक्ष्य का अनुमान लगाया जाता है और इसे सहजता से खारिज नहीं किया जाना चाहिए।"

(1) ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 637.

(2) ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 15.

(3) ए आई.आर. 1954 एस.सी. 322.

(4) ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 645.

विद्वान न्यायाधीश ने तथाकथित मूल वाक्य को नहीं दोहराया बल्कि वास्तव में प्रिवी काउंसिल के दृष्टिकोण को स्वीकृत कर लिया। सर्वोच्च न्यायालय में *अहेर राजा खीमा, बनाम सौराष्ट्र राज्य*([1]) मामले में यह प्रश्न फिर से प्रमुखता से उठाया गया। इस प्रकार बोस, जे. ने बहुमत का दृष्टिकोण व्यक्त करते हुऐ पृष्ठ सं.1287 पर कहा:

"यह, हमारी राय में, अच्छी तरह से व्यवस्थित है कि उच्च न्यायालय के लिए साक्ष्याे पर एक अलग दृष्टिकोण रखना पर्याप्त नहीं है;

यह मानने के लिए सारवान और सम्मोहक कारण भी होने चाहिए कि विचारण न्यायालय गलत था: *अजमेर सिंह बनाम राज्य पंजाब का* ([2]); और यदि विचारण न्यायालय मामले के तथ्यों पर उचित दृष्टिकोण

रखता है, तो भारतीय दण्ड संहिता कि धारा-417 के तहत दखल अदांजी करना तर्कसंगत नहीं है जब तक कि उस दृष्टिकोण को उलटने के लिए वास्तव में मजबूत कारण न हों।"

इस पर ध्यान दिया जा सकता है कि विद्वान न्यायाधीश ने "सारवान तात्त्विक और सम्मोहक कारणों" को "प्रगाढ़ कारणों" के बराबर बताया। कपूर, जे., *भगवान दास बनाम राजस्थान राज्य* ([3]) में पहले के निर्णयों काे उल्लेखित किया गया और व्यक्त किया कि उच्च न्यायालय के दोष मुक्त किए जाने के फैसले को दरकिनार नहीं करना चाहिए जब तक कि

ऐसा करने के लिए "सारवान तात्विक और बाध्यकारी कारण" न हों। इस न्यायालय ने *बलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य* ([4]) में, इसी प्रभाव को पृष्ठ संख्या- 222 पर देखा।

"अब यह अच्छी तरह से व्यवस्थित हो गया है कि यद्यपि उच्च न्यायालय के पास उन साक्ष्यों की समीक्षा करने की पूरी शक्ति है, जिन पर दोषमुक्त करने का आदेश आधारित है, यह भी अच्छी तरह से व्यवस्थित है कि आरोपी व्यक्ति की बेगुनाही की प्रकल्पना प्रकरण द्वारा उसके दोषमुक्त होने से और भी प्रगाढ़ होती है। गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में न्यायालय और विचारण न्यायाधीश के विचारों को उचित महत्व और ध्यान दिया जाना चाहिए; और एक न्यायाधीश द्वारा निकाले गए तथ्यों के निष्कर्ष को बाधित करने में अपीलीय न्यायालय की मथंर गति, जिसे गवाहों और साक्ष्यों

को देखने का लाभ मिला, अावश्यक रूप से ध्यान में रखना चाहिए। इसे भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि अपीलीय न्यायालय के विचारण न्यायाधीश के निष्कर्ष से पृथक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सारवान और बाध्यकारी कारण होने चाहिए।"

(1) [1955] 2 एस.सी.आर. 1285.

(2) [1953] एस.सी.पी. 418, 423.

(3) ए.आई. आर. 1957 एस.सी. 589.

(4) ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 216.

उक्त पर्यवेक्षण केवल इस न्यायालय द्वारा लिए गये पहले के निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों को दोहराती हैं। इस न्यायालय के अन्य निर्णय भी हैं जहां, बिना चर्चा के, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालयों के निर्णयों की पुष्टि की जहां उन्होंने प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित सिद्धांतों का उल्लंघन किए बिना दोषमुक्त करने के अनुक्रम में दखल अंदाजी कि।

प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित और इस न्यायालय द्वारा स्वीकृत सिद्धांतों को प्रत्येक प्रकरणों के तथ्यों पर लागू करने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन अपीलीय अदालतों को ऊपर उद्धृत निर्णयों में इस न्यायालय द्वारा उपयोग किए गए शब्दों "सारवान और सम्मोहक कारणों" के दायरे को समझने में काफी कठिनाई हो रही है। इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा- 417 में कोई शर्त नहीं जोड़ी और न ही जोड़ सकता है। इन शब्दों का उद्देश्य यह विचार अभिप्रेत करना था कि एक अपीलीय अदालत को न केवल प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को

ध्यान में रखना होगा, बल्कि इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपने कारण भी स्पष्टतः बताने होंगे कि दोषमुक्त करने का आदेश गलत था।

उपरोक्त चर्चा से निम्नाकिंत प्रतिफल मिलते हैं: (1) अपीलीय अदालत के पास उन साक्ष्यों का परीक्षण करने की पूरी शक्ति है, जिन पर दोषमुक्त करने का आदेश आधारित है; (2) *श्यो स्वरूप के मामले में निर्धारित सिद्धांत*([1]) ऐसी अपील के निपटान में अपीलीय अदालत के दृष्टिकोण के लिए एक सही मार्गदर्शन प्रदान करते हैं; और (3) इस न्यायालय के निर्णयों में प्रयुक्त विभिन्न वाक्यांश, जैसे कि, (i) "सारवान

और सम्मोहक कारण", (ii) "अच्छे और पर्याप्त रूप से सबल कारण", और (iii) "मजबूत कारण" का उद्देश्य किसी मामले में अपीलीय न्यायालय कि निस्संदेह शाक्ति और दोषमुक्त किए जाने के खिलाफ अपील में संपूर्ण साक्ष्य का परीक्षण करने और अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुंचने कि शक्ति को कम करना नहीं है; परन्तु ऐसा करने में उसे न केवल रिकॉर्ड पर मौजूद हर मामले पर विचार करना चाहिए, बल्कि जो तथ्य के सवालों और उन तथ्यों के निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए दोषमुक्त करने के अपने आदेश के पक्ष में नीचे न्यायालय द्वारा दिए गए कारणों से संबंधित है, बल्कि अपने निर्णयों में उन कारणों को भी व्यक्त करना चाहिए। इसके फैसले में वे कारण निहित हैं, जो यह अभिनिर्धारित करने के लिए उत्साहित करते हैं कि दोषमुक्त करना विधि-सम्मत नहीं था।

(1) (1934) एल.आर. 61 आई.ए. 398.

इस पृष्ठभूमि के साथ अब हम यह सुनिश्चित करने के लिए सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के फैसले पर नजर डालेंगे कि क्या उच्च न्यायालय प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित सिद्धांतों से कहीं हट तो नहीं गया है।

विद्वान सत्र न्यायाधीश के निर्णय की रूपरेखा संक्षेप में इस प्रकार बताई जा सकती है: पहला प्रश्न यह था कि राजपुतो द्वारा एक बरगद के पेड़ के नीचे मिलना और, जाटों को पीटने का षड़यंत्र रचना और हथियारों

से लैस होकर मंदिर में वापस आना क्या अभियोजन पक्ष के मामले में सत्यता थी। इन तथ्यो को गोगा जो कि (पी.डब्ल्यू.-1) है, चंद्रा (पी.डब्लू. 2) और डूंगर सिंह (पी.डब्लू. 21) सहित कई गवाहों ने व्यक्त किया था। डूंगर सिंह (पी.डब्लू. 21) द्वारा दर्ज करायी गयी प्रथम सूचना रिपोर्ट में भी इस तथ्य को उल्लेखित किया गया था। दंगे के दौरान वहां 20 चश्मदीद गवाह मौजुद थे जिन्होंने किये गये षड़यंत्र के बारे में बात की थी; और, उनमें से, दंगे के दौरान पी.डब्ल्यू.-5, 8, 9, 11, 12, 15, 16, 17, 18, 19, 24 और 25 चोटिल हुए। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने पी.डब्ल्यू.-1 और 2 के साक्ष्य पर विचार किया। और इसे अप्रमाणिक और गैर-महत्वपूर्ण विसंगतियों के आधार पर खारिज कर दिया। इसके बाद, उन्होंने ध्यान दिया कि अन्य सभी चश्मदीदों ने, थोड़े मामूली और अप्रासंगिक

भिन्नताआें के साथ, बरगद के पेड़ के पास से लाठी, तलवार और बंदूकें लेकर लौटने की बात कही, परन्तु उन्होंने कोई निश्चित तार्किक निष्कर्ष नहीं दिया कि उन्होंने उस सबूत को माना या नहीं। यद्यपि, फैसले के अंतिम छोर में उन्होंने पाया कि वे यह नहीं मान सकते कि राजपूतों के जन समुह का किसी को मारने का कोई सामान्य उद्देश्य था। तब विद्वान सत्र न्यायाधीश इस बात पर विचार करने के लिए आगे बढ़े कि क्या किसी भी राजपूत को किसी भी गवाह द्वारा पहचाना गया था। उन्होंने अभियुक्तों को तीन समूहों में विभाजित किया, अर्थात्, (i) वे अभियुक्त जो राजपूतों में से थे जो बाईजी के दर्शन के लिए आए थे, (ii) दुसरे वे अभियुक्त जो

बरगद के पेड़ से लौटते समय राजपूतों में से थे लेकिन जिनके लिए वास्तविक दंगों में भाग लेने के सबूत विभक्त थे, और (iii) तीसरे वे अभियुक्त जिनके बारे में अधिकांश चश्मदीद गवाहों ने कहा कि उन्होंने दंगा भड़काया था और कृषकों के जन-समुह को चोटें पहुंचाई थीं। पहले समूह से बात करते हुए, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने, उनके द्वारा पूर्व में दिए गए तथ्यों के आधार पर, गोगा और चंद्रा कि साक्ष्य को अस्वीकार कर दिया, और बताया कि 28 आरोपियों का नाम सभी प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा सर्वसम्मति से नहीं लिया गया था, उन्होंने पाया कि लंबे समय से राजपूतों और कृषकों के बीच दुश्मनी थी, और एक मानदंड रखा कि, किसी विशेष अभियुक्त की उपस्थिति का निर्धारण करने के लिए, उसके खिलाफ विधि-विरूद्ध सभा में प्रकट कृत्य करने का आरोप होना चाहिए। उक्त मानदंड को लागू करके

उन्होंने माना कि पहले समूह में आने वाले आरोपियों जिसमें अपीलकर्ता 7, 8 और 9 शामिल थे में से कोई भी, उन अपराधों के दोषी नहीं थे जिनके लिए उन पर आरोप लगाए गए थे। दूसरी श्रेणी में आते हुए, जिसके साथ हम इस अपील में चिंतित नहीं हैं, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने फिर से परीक्षण लागू किया कि प्रत्येक आरोपी के खिलाफ एक प्रत्यक्ष कार्य साबित किया जाना चाहिए और माना गया कि उनके खिलाफ कोई प्रकरण नहीं बनाया गया था। तीसरे समूह की ओर ध्यान दिलाते हुए, यह देखने के बाद कि चश्मदीद गवाहों में से 12 वे थे जिन्हें चोटें आईं, विद्वान सत्र न्यायाधीश ने उनके साक्ष्य को स्वीकृत करने के लिए एक और परीक्षण शुरू किया। उनके द्वारा अपनाए गए परीक्षण के प्रभाव और सार में यह था कि एक अभियुक्त की पहचान केवल एक गवाह द्वारा की गई थी और यह साबित नहीं हुआ था कि उसने प्रकट कृत्य किया था, उसे संदेह का लाभ देकर दोषमुक्त कर दिया जाना चाहिए। इस परीक्षण को उक्त गवाहों पर लागू करते हुए उन्होंने माना कि उक्त आरोपी दोषी नहीं थे। उपरोक्त प्रणाली से साक्ष्यों पर विचार करने के बाद, वह निम्नाकिंत अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचे:

> "मैं यह नहीं मान सकता कि राजपूतों की सभा का किसी की हत्या करने का कोई सामान्य उद्देश्य था। सब कुछ अचानक घटित हुआ। जिन राजपूतों ने दंगों में

भाग लिया था, उनका नाम सच्चाई से नहीं लिया गया है। और निर्दोष व्यक्तियों को फंसाया गया है और उन लोगों के प्रकरण जिन व्यक्तियों पर कोई प्रकट कृत्य करने का आरोप है वे भी संदेहास्पद हैं।"

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, अपील पर, उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने 9 अपीलार्थीयों के संबंध में अपील की अनुमति दी और अन्य के संबंध में इसे अपास्त कर दिया। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने कहा कि उन्हें यह मानने में जरा भी झिझक नहीं है कि अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किया गया प्रकरण, कुल मिलाकर, पर्याप्त सत्य

का प्रतिनिधित्व करता है और बरगद के पेड़ पर हुई घटनाएं सच थीं। उन्होंने बताया कि मुख्य गवाहों, गोगा और चंद्रा, जिन्होंने बरगद के पेड़ पर क्या-क्या हुआ था, के साक्ष्यों पर विश्वास नहीं करने के लिए सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों को कायम नहीं रखा जा सका और उनके साक्ष्यों में कथित विसंगतियां और विरोधाभास हैं। ऐसे नहीं थे कि सत्यता से विमुख हो जाएं। हमने गोगा और चंद्रा के साक्ष्यों का भी अध्ययन किया है और हम उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों की टिप्पणियों से पूरी तरह सहमत हैं कि उनके साक्ष्य स्वाभाविक और सुसंगत थे और सत्र न्यायाधीश द्वारा बताई गई तथाकथित विसंगतियाे में कोई विरोधाभास बिल्कुल भी नहीं थे। यदि थे भी, तो वे इतने तुच्छ थे कि किसी भी तरह

से उनकी सत्यता को प्रभावित कर सकते थे। विद्वान न्यायाधीशों ने आगे बताया कि गोगा और चंद्रा के साक्ष्य को एक डूंगर सिंह (पी.डब्लू.-21) के साक्ष्य द्वारा समर्थन दिया गया था, पुलिस कांस्टेबल जिसने शुरुआती समय में प्रथम सूचना रिपोर्ट दी थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्ज विवरण उसके साक्ष्यों की संपुष्टि करते हैं। विद्वान न्यायाधीशों ने तब संकेत दिया कि इस संस्करण को व्यावहारिक रूप से अन्य गवाहों द्वारा समर्थित किया गया था और उन्हें कोई कारण नहीं दिखता कि इसका आविष्कार क्यों किया जाना चाहिए था, यदि यह सच नहीं था। उक्त सबूतो को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने खुद को विद्वान विचारण न्यायाधीश के निष्कर्ष को स्वीकृत करने में पूरी तरह से असमर्थ पाया कि यह एक ऐसा प्रकरण था जहां राजपूतों के विधि-विरूद्ध जमाव वाले व्यक्तियों द्वारा कृषक पक्ष के कुछ व्यक्तियों कि पिटाई की गई थी और दंगा किया गया हो। उन्होंने पाया कि राजपूत एक विधि-विरूद्ध जमाव के सदस्य थे और वे सभी कृषकों की पिटाई करने हेतु एक सामान्य उद्देश्य से उत्साहित थे। यह मानते हुए कि विद्वान सत्र न्यायाधीश विधि-विरूद्ध जमाव के प्रश्न पर स्पष्टतः गलत थे, विद्वान न्यायाधीश प्रत्येक अभियुक्त के मामले पर विचार करने के लिए अग्रसर हुऐ। उन्होंने इस न्यायालय में *अब्दुल गनी बनाम एम.पी. राज्य* ([1]) के फैसले के आधार पर निम्नाकिंत सिद्धांत अपनायाः

"हम अच्छी तरह मानते हैं कि दंगों के प्रकरणाेें में जहां दो शत्रु गुट शामिल हों, वहां यह अतिशयोक्ति की जाएगी, और कुछ निर्दोष व्यक्तियों को झूठा फंसाए जाने की संभावना हो सकती है; परन्तु साथ ही, यह न्यायालयों का कर्तव्य है कि वे लापरवाही न बरतें और आसान विधि का पालन करके पूरे मामले को सुलझाएं। विसंगतियों पर विश्वास करें, और, जहां अभियोजन पक्ष का मामला काफी हद तक सच है, यह जांच करें कि क्या किसी अभियुक्त ने अपराध में हिस्सेदारी कि थी, और यदि उनकी उपस्थिति सभी उचित संदेह से परे प्रमाणित की गई हो, तो उन्हें उनके द्वारा किए गए अपराधों के लिए दण्ड का भागीदार समझे और दंडित करें।"

सबूतों के आधार पर उन्होंने पाया कि अपीलार्थी-1, सांवत सिंह, जो मौके पर मौजूद था, और विधि-विरूद्ध जमाव का सदस्य था और उसने वास्तव में श्योनाथ पर अपनी तलवार से वार किया था, जिसके परिणामस्वरूप उसकी तीन उंगलियां कट गईं; अपीलार्थी-2, धन सिंह, उन व्यक्तियों में से एक था जिन्होंने पिटाई में अग्रणी भूमिका निभाई थी; अपीलार्थी-3, मंगेज सिंह,

(1) ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 31.

निस्संदेह विधि-विरूद्ध जमाव में भाग लेने वालों में से एक था; अपीलार्थी-4, कालू सिंह, तलवार से लैस था और उसने जाटों पर हमला किया था और उसने यह कथन किया कि उस पर जाटों ने सबसे पहले हमला किया था, जो सच नहीं था; अपीलार्थी-5, नारायण सिंह, विधि-विरूद्ध जमाव के सदस्यों में से एक था और उसने पी.डब्ल्यू.-25; को पीटा था। अपीलार्थी-6 गुलाब सिंह, ने श्योकरण जाट पर लाठियों से प्रहार किया; और अपीलार्थी-7, सबल सिंह, अपीलार्थी-8, बनी सिंह, और अपीलार्थी-9, इंदर सिंह, जिन्होंने घटनास्थल पर अपनी उपस्थिति को स्वीकृत तो किया परन्तु व्यक्तव्य दिया कि उन पर जाटों द्वारा हमला किया गया था, वे स्पष्ट रूप से दंगे में भागीदार थे। जहां तक अन्य अभियुक्तों कि बात है, विद्वान न्यायाधीशों ने सम्पूर्ण साक्ष्यों का परीक्षण करने के बाद सत्र न्यायाधीश की इस राय से सहमत हुए कि उचित संदेह से परे उन अभियुक्तों के खिलाफ कोई प्रकरण नहीं दर्ज किया गया था। जहां तक इन अभियुक्तो का प्रश्न है, यह साबित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि उनमें से किसी के पास कोई हथियार था या उन्होंने किसी जाट या कृषक पर हमला करने में कोई सक्रिय भूमिका निभाई हों। परिणामतः, उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने स्वीकृत किया कि अपीलार्थीयों ने जाटों को मारने के लिए एक विधि-विरूद्ध जमाव का गठन किया था और उन्हें पता होना चाहिए कि उस सामान्य उद्देश्य के लिए हत्याएं की जा सकती हैं। उस निष्कर्ष पर,

उन्होंने अपीलार्थीयों को दोषी ठहराया और सजा सुनाई, जैसा कि पूर्व निर्णय में व्यक्त किया गया था।

अब, क्या यह व्यक्त किया जा सकता है कि, जैसा कि अपीलार्थीयों के वकील का तर्क है, कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित और साथ ही बाद में इस न्यायालय द्वारा स्वीकृत किए गए किसी भी सिद्धांत की अनदेखी की थी? हमें नहीं लगता।

दोनों न्यायालयों के निष्कर्षों के पूर्ववर्ती विश्लेषण से निम्नांकित तथ्यों का पता चलता है: सत्र न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष के सामान्य प्रकरण पर कहा कि राजपूत, मंदिर में अपने सामान्य स्थान पर कब्जा करने के जाटों के रवैये से नाराज होकर बरगद के पेड़ के पास गए। थोड़े

समय के लिए षड़यंत्र और बातचीत कि और जाटों पर हमला करने के लिए मंदिर में वापस आये, अभियोजन पक्ष के मुख्य गवाहों, अर्थात् गोगा, चंद्र और डूंगर सिंह के साक्ष्य को उन आधारों पर खारिज कर दिया जो एक पल की भी जांच में टिक नहीं पाते हैं और इसे नजरअंदाज कर दिया। भारी भरकम साक्ष्य, जिसने बिना वैध या स्वीकार्य कारण बताए, उक्त तीन गवाहों के साक्ष्य की पुष्टि की। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने अभियोजन मामले के इस संस्करण पर कोई निश्चित निष्कर्ष भी नहीं दिया, यद्यपि यह स्वीकृत किया जाना चाहिए कि उन्होंने इसे खारिज कर दिया है। व्यक्तिगत मामलों के संबंध में उन्होंने गवाहों को तीन श्रेणियों में

विभाजित किया, और, मशीनी परीक्षण लागू करते हुए, उनके साक्ष्य पर कार्रवाई करने से इनकार कर दिया। उच्च न्यायालय ने सत्य ही कहा कि ऐसा कोई कारण नहीं है कि सामान्य मामले के समर्थन में भारी सबूत हों और तीन गवाहों, गोगा, चंद्र और डूंगर सिंह के साक्ष्य को क्यों अस्वीकार किया जाए। उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने उनके साक्ष्य को स्वीकृत कर लिया, जिसने निर्णायक रूप से प्रमाणित किया कि सामान्य प्रकरण सत्य था और अपीलार्थीयों ने वास्तव में जाटों पर तलवारों और लाठियों से हमला करने में सक्रिय हिस्सेदारी कि थी। ऐसा करने में, विद्वान न्यायाधीश प्रिवी काउंसिल द्वारा निर्धारित किसी भी सिद्धांत से पीछे नहीं हटे। वास्तविकता में, उन्होंने सत्र न्यायाधीश के द्वारा दिये फैसले में हस्तक्षेप किया, क्योंकि वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि, जहां तक

अपीलार्थीया का संबंध है, उक्त निर्णय स्पष्ट रूप से गलत था और मामले में पेश किए गए भारी और विश्वसनीय साक्ष्यों से उलटा था। हमारी राय में, उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने मामले को सही दृष्टिकोण से देखा और पूरे साक्ष्य पर विचार करने पर निश्चित निष्कर्ष दिए।

अब सवाल यह है कि, क्या अपीलकर्ताओं ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद-136 के तहत उच्च न्यायालय के फैसले में हस्तक्षेप का कोई मामला बनाया है।

संविधान का अनुच्छेद-136 इस न्यायालय को उन उपयुक्त प्रकरणों में अपीलों पर विचार करने के लिए व्यापक विवेकाधीन शक्ति प्रदान करता है जो अन्यथा संविधान द्वारा प्रदान नहीं कि गईहै। यह आरक्षित शक्ति में निहित है कि इसे विस्तृत रूप से परिभाषित नहीं किया जा सकता है, परन्तु निर्णय किए गए मामलों में हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दी जाती है जब तक कि "कानूनी प्रक्रिया के स्वरूपों की उपेक्षा या प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन या पर्याप्त और गंभीर अन्याय न किया गया हो"। यद्यपि अनुच्छेद-136 व्यापक शब्दों में वर्णित है, इस न्यायालय की परंपरा असाधारण मामलों को छोड़कर तथ्य के प्रश्नों पर हस्तक्षेप करने की नहीं है, जब निष्कर्ष ऐसा हो कि यह न्यायलय के आंतरिक स्वरूप को झकझोर कर रख दे। वर्तमान प्रकरण में, उच्च न्यायालय ने *शेओ स्वरूप के मामले* ([1]) में निर्धारित किसी भी सिद्धांत का उल्लंघन नहीं किया है और ऐसे कारण भी दिए हैं जिनके कारण यह माना गया कि दोषमुक्त करना विधि-सम्वत नहीं था। इन परिस्थितियों में, हमारे द्वारा उक्त निष्कर्षों को स्वीकृत न करने का कोई आधार नहीं रहता है।

(1) (1934) एल. आर. 61 आई. ए. 398.

परिणामतः, अपील विफल हो कर और खारिज की जाती है।

अपील अस्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक गिरीश अग्रवाल द्वारा किया गया है।

अस्वीकरणः यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।

अनुवादक का नाम- गिरीश अग्रवाल

(न्यायिक अधिकारी)